Received 21.5.97
११८४
~~७२९८~~

वर्ष : २१ अङ्क : २

जैन भवन

मई १९९७ ई०

तित्थयर

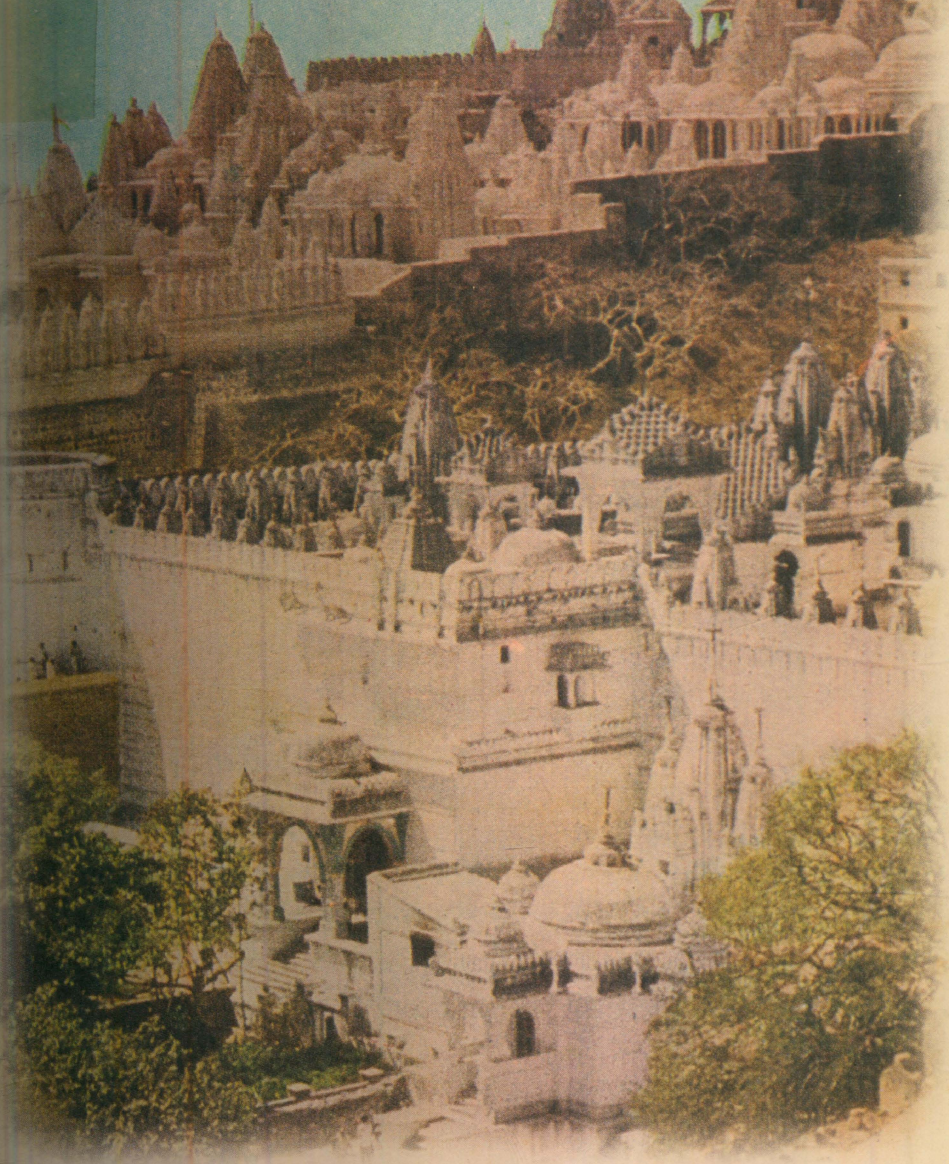

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष २१ : अंक २

मई १९९७

□

संपादन

राजकुमारी बेगानी

लता बोथरा

□

आजीवन : एक हजार रुपये

वार्षिक शुल्क : पचपन रुपये

प्रस्तुत अंक : पाँच रुपये

□

प्रकाशक

जैन भवन

पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,

कलकत्ता-७०००७

दूरभाष : २३८२६५५

□

मुद्रक

अनुप्रिया प्रिन्टर्स

६ ए, बड़ौदा ठाकुर लेन,

कलकत्ता-७

सूची

श्रावक-जीवन	३
वसुदेवहिंडी और वृहत्कथा	१३
राजा सम्प्रति	२६
संकलन	३१

तित्थयर

संवादपत्र रजिस्ट्रेशन (केन्द्रीय) विधि (१९५६) के ८ नम्बर धारा के अनुसार निवृति :

प्रकाशन स्थान :	कलकत्ता
प्रकाशन अवधि :	मासिक
मुद्रक का नाम :	लता बोथरा (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५, कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
प्रकाशक का नाम :	लता बोथरा (भारतीय)
ठिकाना :	पी० २५, कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
सम्पादक का नाम :	लता बोथरा
ठिकाना :	पी०-२५, कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७
सत्वाधिकारी का नाम :	जैन भवन
ठिकाना :	पी० २५, कलाकार स्ट्रीट कलकत्ता-७

मैं, लता बोथरा, घोषणा करती हूँ कि उपरोक्त विवरण मेरें ज्ञान एवं विश्वासानुसार सत्य है ।

लता बोथरा

१५-५-९७

श्रावक जीवन (८)

आचार्य श्री विजय भद्रगुप्त सुरीश्वरजी महाराज

पूर्वानुवृत्ति

परम कृपानिधि महान् श्रुतधर आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी स्वरचित 'धर्मबिन्दु' ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में गृहस्थ का विशेष धर्म बता रहे हैं।

धर्म का उपदेश देनेवालों को मार्गदर्शन देते हुए ग्रन्थकार महात्मा कहते हैं कि पहले साधुधर्म का उपदेश दिया करो। यदि भव्य जीव साधु धर्म को स्वीकार करने में अशक्ति प्रदर्शित करें तो उनको अणुव्रतादि बारह व्रतमय विशेष गृहस्थधर्म का उपदेश दो। धर्म का उपदेश देते ही रहो! थको नहीं धर्मोपदेश देने में। हितबुद्धि से उपदेश दिया करो।

टीकाकार आचार्यश्री कहते हैं—

श्रममविचिन्त्यात्मगतं तस्माच्छ्रेयः सदोपदेष्टव्यम्।
आत्मानं च परं च हि हितोपदेष्टाऽनुगृह्णाति॥

'हितदृष्टि से उपदेश देने वाला स्वयं पर और दूसरों पर अनुग्रह करता है। इसलिये उपदेशक को अपने श्रम की परवाह किये बिना सदैव उपदेश देते रहना कल्याणकारी है।' कहते हैं—सदैव धर्मोपदेश देते रहो!

धर्मदेशना : जगत में महान उपकार :

चूंकि धर्मदेशना-धर्मोपदेश जैसा उपकार, इस दुनिया में दूसरा नहीं है। इसलिये परानुग्रहप्रवृत्ति के अध्यवसायवाले मुनिवरों को धर्मोपदेश देने की श्रेष्ठ परानुग्रह की प्रवृत्ति करनी चाहिये। इसी ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में ग्रन्थकार महर्षि ने कहा है :

"नोपकारो जगत्यस्मिंस्तादृशो विद्यते क्वचित्॥
यादृशी दुःखविच्छेदाद्देहिनां धर्मदेशना॥"

धर्मोपदेश सुनने से श्रोताओं के तन-मन के दुःख दूर होते हैं। टीकाकार आचार्यदेव ने 'दुःखविच्छेद' का अर्थ 'शारीर मानसदुःखापनयन' किया है! धर्म का उपदेश सुनने से श्रोताओं के शारीरिक दुख दूर हो जाते हैं। और मानसिक दुख नष्ट हो जाते हैं! इसलिये धर्मोपदेश देना यह अद्वितीय उपकार करने का काम है।

धर्मोपदेश सुनने से शारीरिक दुःख का नाश :

ऐसा ही उपकार किया था आचार्यदेव मुनिचन्द्रसूरीश्वरजी ने। जब राजकुमारी मयणासुन्दरी की शादी, राजा ने कुष्ठरोगी उम्बरराणा के साथ कर दी थी तब मयणासुन्दरी उम्बरराणा के साथ गुरुदेव मुनिचन्द्रसूरीजी के पास गयी थी। उसने गुरुदेव को कहा था :

'गुरुदेव नगर में जैनधर्म की घोर निन्दा हो रही है। मैं जैनधर्म की आराधना करने वाली और मुझे ऐसा कोढी पति मिला··· इससे मेरे जैनधर्म की लोग निन्दा करते हैं। आप कृपा कर ऐसा उपाय बतायें कि जिससे मेरे पति का कोढ़ रोग दूर हो जाय और लोगों का धर्म निन्दा करना बन्द हो जाय।

आचार्यदेव ने उपाय बताया श्री सिद्धचक्र महामन्त्र की आराधना। नौ दिन आयम्बिल का तप करने का और नवपद का एकाग्र मन से ध्यान करने का। मयणासुन्दरी ने और उंबरराणा ने वैसे ही तप किया, ध्यान किया और सिद्धचक्र-यन्त्र की पूजा की। परिणाम आप लोग जानते ही हैं कि उंबरराणा का कोढ़ रोग दूर हो गया। वह देवकुमार जैसा रूपवान हो गया और निन्दा करनेवाले के मुँह बन्द हो गये।

मात्र उंबरराणा के ही रोग दूर हुए ऐसा नहीं है, उसके प्राण रक्षक सात सौ साथी के भी शरीर निरोगी हो गये ! यह सारा प्रभाव किस का था ! धर्मोपदेश का। इसलिये शास्त्रकार आचार्यदेव कहते हैं कि सदैव धर्म का उपदेश दिया करो। थके बिना धर्म का उपदेश किया करो। यह श्रेष्ठ उपकार का काम है।

धर्मोपदेश से मन के दुःख दूर होते हैं :

धर्म के उपदेश से जैसे तन के दुःख दूर होते हैं वैसे मन के दुःख भी दूर होते हैं। मेघकुमार मुनि जिस समय श्रमण भगवान् महावीर के सामने जाकर खड़े थे, मन में घोर अशान्ति थी उनके। रात भर उन्हें नींद नहीं आयी थी। वे सारी रात आर्तध्यान करते रहे थे। 'सुबह भगवंत को कहा, मैं पुनः गृहवास में चला जाऊँगा। साधुजीवन के कष्ट मेरे से सहे नहीं जाते हैं।

वे भगवन्त के सामने आये। भगवंत ने करुणाभीनी दृष्टि से मेघकुमार मुनि को सामने देखा। अमृतमधुर वाणी बरसायी। हृदयस्पर्शी उपदेश दिया। मेघकुमार के पूर्वजन्म की कहानी सुनायी। हाथी के जन्म में एक खरगोश को बचाने के लिये स्वेच्छा से कैसा और कितना दुःख सहन किया था, यह सब याद कराया। मेघकुमार मुनि को पूर्व जन्म की स्मृति हो आयी ! 'अरे मैंने हाथी के भव में समताभाव से दुःख सहा था तो यह मनुष्य का जन्म पाया है मैंने। और

यहां इस साधुजीवन में थोड़ा सा कष्ट आने पर मैं कितना अशान्त हो गया ? यह पवित्र जीवन छोड़कर गृहस्थावास में जाने को तैयार हो गया····! नहीं, मैं घरवास में नहीं जाऊँगा।'

भगवंत के उपदेश से मेघकुमार मुनि का मन स्वस्थ, प्रसन्न और शान्त हो गया और वे धीर-वीर बन, मोक्षमार्ग पर अग्रसर हो गये।

युवराज युगबाहु पर उसके ही बड़े भाई मणिरथ ने गले पर तलवार का प्रहार कर दिया····उस समय युगबाहु की पत्नी मदनरेखा ने अशान्त और वैराग्नि से प्रचंड बने हुए युवराज को धर्म का उपदेश दिया···युगबाहु का मन प्रशान्त बना, वैराग्नि बुझ गया और वह मरकर देवगति में चला गया। धर्मोपदेश की ही यह महिमा थी।

हम लोगों को ऐसे अनेक अनुभव हैं कि धर्मोपदेश सुनकर, आत्महत्या कर मर जाने के विचारवालों ने वह विचार छोड़ दिया, उनके मन शान्त, प्रसन्न और स्वस्थ बने। वे धर्ममार्ग पर चलने वाले बने। हिंसा के विचार छोड़ देते हैं उपदेश सुनकर। ग्लानि और खेद दूर हो जाता है उपदेश सुनकर।

धर्मोपदेशक कैसे चाहिए ?

परन्तु ये सारी बातें धर्मोपदेशक मुनि पर निर्भर करती है। धर्म का उपदेश देने वाले साधुपुरूष—

१. श्रोताओं की कक्षा समझने वाले चाहिये।
२. उपदेश देने में थकने वाले नहीं चाहिये।
३. परोपकार की प्रवृत्ति में रसिक चाहिये।
४. स्व-पर शास्त्रों के ज्ञाता चाहिये।

अब, एक-एक बात को संक्षेप में समझाता हूँ। बड़ी महत्व की ये बातें हैं। पहली बात है श्रोताओं की कक्षा समझने की। आचार्यदेव श्रीहरीभद्र-सूरीश्वरजी ने 'षोड़शक' नाम के ग्रन्थ में श्रोताओं की तीन कक्षा बतायी है— १. बाल, २. मध्यम, ३, बुध.

धर्मतत्त्व से जो अनभिज्ञ होते हैं, धर्मक्षेत्र में जो नये नये आते हैं वे जीव बाल जीव कहलाते हैं ! संसार के क्षेत्रों में भले ही बुद्धिमान् हों, बड़े उद्योग चलाने वाले हो, लाखों-करोड़ों रुपयों की लेन-देन करने वाले हों, परन्तु यदि वे धर्मतत्त्व से सर्वथा अनभिज्ञ हैं, धर्मक्षेत्र में नये नये आये हैं, वे बाल जीव कहे जाते हैं। ऐसे जीवों को ऐसी धर्मदेशना देनी चाहिये कि जिससे उनके तन-मन के दुःख···संताप क्लेश दूर हों। उनके हृदय में दान, शील और तप धर्म के प्रति लगाव हो जाय। वे परमात्मा वीतरागदेव के प्रति, सद्गुरुओं के प्रति और

जिनप्रणित धर्म के प्रति श्रद्धावान् बन जायें। ऐसे जीवों को क्रियात्मक धर्म ज्यादा पसंद आता है।

मध्यम कक्षा के लोगों को व्रत और नियम ज्यादा पसन्द होते हैं। व्रत-नियमों का स्वरूप, व्रत-नियमों के फल···प्रभाव वगैरह सुनने में उनकी ज्यादा रुचि होती है। इन लोगों को व्रत-नियमों के धारक···और पालक स्त्री पुरुषों के प्रति ज्यादा आकर्षण होता है। बाल कक्षा के लोग ऐसे व्रत-नियम नहीं देखते! वे तो मात्र धर्म का वेश देखते हैं।

तीसरी कक्षा के बुध-विद्वान् लोगों की अभिरुचि तत्त्वज्ञान में होती है। और ये लोग ही तत्त्वज्ञान की गहराई में जा सकते हैं। आत्म-स्वरूप की गहन बातें, मोक्ष स्वरूप की अगम-अगोचर बातें ये बुध मनुष्य ही समझ पाते हैं। सप्त नयों की और चार निक्षेप की बातें ये लोग ही ग्रहण कर सकते हैं। आत्मा के स्वभाव की और विभाव की चर्चा ये विद्वान् पुरुष ही कर सकते हैं।

कर्मबंध की, गुणस्थानकों की, गणित की, चौदह राजलोक की सूक्ष्म बातों वाले जीव और मध्यम जीव प्रायः नहीं समझ पाते। बुद्धिमान् बुध मनुष्य ही समझ पाते हैं।

समाज में सर्वत्र बुद्ध मनुष्य थोड़े होते हैं। इन से मध्यम जीव ज्यादा होते हैं और उनसे बालजीव ज्यादा होते हैं। धर्मोपदेश सुनने के लिये इकठ्ठे हुए एक हजार लोगों में नौ सौ लोग बाल, नब्बे लोग मध्यम और दस लोग बुध हो सकते हैं प्रायः। ऐसी सभाओं में विशेष रूप से बाल जीवों को लक्ष्य बनाकर धर्मोपदेश देना चाहिए।

बालजीव प्रचुर जीवों के सामने मोक्ष की और गहरे तत्त्वज्ञान की बातें कहने से कोई फायदा नहीं होता। वे लोग मोक्ष की बात समझ नहीं सकते। मोक्षतत्त्व को समझने की प्रायः उनमें बुद्धि नहीं होती है।

एक युवक जो कि बुद्धिमान था, ग्रेजुएट था, परन्तु धर्ममार्ग में नया नया जुड़ा था। बम्बई में रहता था, उसका एक मित्र उसको जैनाचार्य के प्रवचन में ले गया। प्रवचन में उसने सुना कि 'जब तक मोक्ष अच्छा नहीं लगता है और संसार के सुख बुरे नहीं लगते हैं तब तक तुम्हारी सारी धर्मक्रियायें व्यर्थ हैं! तुम्हारा कोई आत्महित नहीं कर सकता है!' प्रवचन सुनने के बाद वह युवक गहरे विचार में डूब गया। 'मैंने 'मोक्ष' को समझा नहीं है तो फिर 'मोक्ष' अच्छा लगने की तो बात ही कहां है! और संसार के सुख मुझे अच्छे लगते हैं, प्रिय लगते हैं···तो फिर मैं जो परमात्मपूजा की धर्मक्रिया करता हूं, वह क्रिया व्यर्थ ही है! मैं जो नवकार ग्रन्थ का जाप करता हूँ वह भी व्यर्थ है!'

उसने धर्मक्रिया छोड़ दी। कुछ महीनों के बाद जब वह मुझे मिला, उसने यह बात बतायी ! मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ ! मैंने उसको समझाया कि—'भैया भले तू मोक्ष का स्वरूप नहीं समझता है, परन्तु तुझे मोक्ष के प्रति द्वेष तो नहीं है न ? कोई मोक्ष की बात करे तो तू नाराज तो नहीं होता है न ?" उसने कहा : 'मैं क्यों नाराज होऊं ? राजी होना या नाराज होना, यह तो मोक्ष के स्वरूप को जानने के बाद की बातें हैं। मुझे मोक्ष के प्रति द्वेष नहीं है।' मैंने कहा : "तो फिर तेरी धर्मक्रिया निष्फल नहीं है, सार्थक है।"

दूसरी बात मैंने समझायी—'तुझे संसार के वैषयिक सुख अच्छे लगते हैं··· मीठे लगते हैं, प्रिय लगते हैं, परन्तु तेरी मान्यता क्या है ? तू क्या संसार के सुखों को उपादेय मानता है ?' उसने कहा : 'नहीं, मैं उपादेय तो नहीं मानता। मुझे वैषयिक सुख प्रिय लगते हैं—यह बात भी मैं अच्छी नहीं मानता हूं। मेरी कमजोरी मानता हूँ।' मैंने कहा 'तो फिर तुझे धर्मक्रियाएँ छोड़नी नहीं चाहिये, करनी चाहिये। तेरी धर्मक्रिया व्यर्थ नहीं है, सार्थक है।

उसको समझाया। उसके मन का समाधान किया। दूसरा एक व्यक्ति आया। वह भी वैसा ही उपदेश सुनकर आया था। था बुद्धिमान्, परन्तु नया नया धर्मक्षेत्र में आया था। ग्रेज्युएट होने के बाद उसने सर्विस-नौकरी पाने के लिये छः महीने तक प्रयत्न किया, परन्तु सर्विस नहीं मिली। वह बहुत अशान्त हो गया था। गरीब माता-पिता का वह पुत्र था। वह अपने माता-पिता का आर्थिक दृष्टि से सहायक बनना चाहता था। नौकरी नहीं मिलने से बड़ा परेशान था। एक दिन वह पास में ही जो उपाश्रय था, वहां प्रवचन सुनने चला गया। चातुर्मास के दिन थे। एक विद्वान् मुनिराज का वहां चातुर्मास था। श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवंत की आराधना चल रही थी। करीबन् ५०० भाई-बहनों को अठ्ठम का तप था और जाप-ध्यान करते थे।

जब वह युवक उपाश्रय में गया, तो वहां मुनिराज का प्रवचन चल रहा था। श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवंत की महिमा बताते हुए उन्होंने कहा : 'जो कोई श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ भगवंत की शरण में जाता है, उसके दुःख दूर हो जाते हैं, अशान्ति दूर हो जाती है। मनोवांछित सुख प्राप्त होता है।

उस युवक के मन में यह बात जँच गई। उसने अपने मन में श्री शंखेश्वर पार्श्वनाथ की शरण स्वीकार कर ली और मनोमन प्रार्थना की·· हे भगवंत··· मुझे नौकरी मिल जायेगी तो शीघ्र ही तेरे दर्शन करने आऊँगा और अठ्ठम का तप करूँगा। प्रभो, तू ही मेरा शरण्य हो।'

दूसरे ही दिन उसको नौकरी मिल गई। अच्छी नौकरी मिली। वह शंखेश्वरजी गया, अठ्ठम तप किया और बाद में वह शंखेश्वरजी पार्श्वनाथ भगवंत का अनन्य आराधक बन गया।

एक दिन वह युवक बम्बई में एक आचार्य श्री के प्रवचन में गया। वहाँ उसने सुना—"संसार के आशय से किया हुआ धर्म, अधर्म से पाप से भी ज्यादा खराब है। वह धर्म जनम जनम जीव को संसार में भटकाता है!" वह तो स्तब्ध रह गया! उसके मन में द्विधा पैदा हो गई। उसने अपने एक मित्र से यह बात की। उसका वह मित्र मेरा परिचित श्रावक है, वह उसको मेरे पास ले आया। मैंने सारी बात सुनी। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ! हर बात में शास्त्र और शास्त्रकारों की बात करने वाले···प्रौढ़ और प्रभावशाली आचार्यश्री ने क्या 'ललितविस्तरा', 'पंचाशक', 'श्राद्धदिनकृत्य', 'धर्मसंग्रह', 'प्रश्नचिंतामणि', 'षोड़शक', 'पुष्पमाला', 'उत्तराध्ययन-सूत्र', 'श्राद्धविधि', 'उपदेशतरंगिणी', 'योगबिन्दु' वगैरह ग्रन्थों का अवगाहन नहीं किया होगा? जैन शास्त्रकार बाल-मुग्ध जीवों को इहलौकिक सुखों के लिये भी जिनोक्त धर्म करने का निषेध करते ही नहीं हैं। चूँकि धर्मप्रवृत्ति से ही पापप्रवृत्ति दूर होती है। और मनुष्य के जीवन में अरिहंत परमात्मा आराध्य बनते हैं। सांसारिक प्रयोजनवाला-लौकिक आशयवाला भी धर्मानुष्ठान, मोक्ष के प्रति द्वेष नहीं होने से, सदनुष्ठान का कारण बनता है। आगे चलकर, वह मोक्षमार्ग का आराधक बन जाता है। धर्म आराधना का प्रयोजन भले ही जीवननिर्वाह हो या संसारसुख की लालसा हो, उसके लिये धर्म ही उपादेय हैं।

ऐहिक प्रयोजन सिद्ध होने से जीवात्मा आर्तध्यान से व असमाधि से बचता है। उसका चित्त स्वस्थ बनता है, इस से वह धर्मप्रवृत्ति कर सकता है। आगे बढ़ते हुए शुद्ध-मोक्ष का आशयवाला धर्म कर, वह मुक्ति का सुख पा सकता है।

मैंने उस युवक को समझाया। उसके मन का समाधान हुआ।

बालजीवों के सामने, उनके योग्य धर्मोपदेश नहीं देने से कैसे अनर्थ होते हैं—इस के यहाँ मात्र दो उदाहरण ही आपको दिये हैं। परन्तु इस प्रकार कितने ही अनर्थ होते होंगे? इसलिये धर्मोपदेशक को बहुत सावधानी से उपदेश देना चाहिये। शास्त्रवचनों का संदर्भ समझ कर, सापेक्षदृष्टि से उपदेश देना चाहिये।

कभी-कभी, बुध-विद्वान् पुरुषों के सामने बालयोग्य उपदेश देने से उपदेशक का उपहास होता है। मेरे साथ भी वैसी घटना घटी थी। करीबन् ३० वर्ष पहले की बात है। हमारे स्व० परम गुरुदेवश्री के साथ विहार करते-करते हम सौराष्ट्र के एक गांव में गये थे। लम्बा विहार कर उस गाँव में पहुंचे

थे। स्वागत-जुलूस भी एक घन्टा फिरा होगा। उपाश्रय में आते ही प्रवचन का कार्यक्रम था। पूज्य गुरुदेवश्री ने पहले ही दिन मुझे कहा : 'यहाँ आज से तुझे प्रवचन देने हैं।'

पहला ही दिन था। सर्वप्रथम उस गांव में आये थे। लोगों से परिचय नहीं था। सोचा कि 'छोटे गांव में लोग सामान्य बुद्धि के होंगे।' मैंने तो प्रवचन में एक अच्छी कहानी सुना दी और प्रवचन पूरा कर दिया !

प्रवचन में सात-आठ प्रबुद्ध श्रावक थे। उन्होंने जाकर पूज्य गुरुदेवश्री से कहा : 'आज जिन मुनिराज ने प्रवचन दिया, क्या उनको शास्त्रों का अध्ययन नहीं है ? विशेष तत्त्वज्ञान नहीं पाया है ? उन्होंने तो एक रसपूर्ण कहानी सुना कर प्रवचन पूरा कर दिया।'

प्रवचन से उन सात-आठ श्रावकों को संतोष नहीं हुआ, चूँकि वे प्रबुद्ध थे !

प्रश्न : दूसरे दिन तो फिर तत्त्वज्ञान ही दिया होगा प्रवचन में ?

महाराजश्री : नहीं, वैसा करता तो, उन सात-आठ श्रावकों के अलावा जो सौ-सवा सौ जितने भाई-बहन आते थे प्रवचन में, उनको संतोष नहीं होता और वे पूज्य गुरुदेव के पास जाकर शिकायत करते ! इसलिये मध्यम मार्ग अपनाया ! कुछ तत्त्वज्ञान, कुछ तर्क और कुछ कहानी ! बस, फिर तो सब खुश हो गये थे !

धर्मोपदेश देने में थकना नहीं है :

उपदेश देने में परिश्रम तो होता है। जब बड़ी प्रवचन-सभा होती है, तीन-चार हजार अथवा पांच-सात हजार····दस हजार लोगों की सभा को धर्म का उपदेश सुनाना होता है [माईक के बिना] तब कड़ा परिश्रम करना पड़ता है। सतत् डेढ़-दो घन्टे तक प्रवचन देते हुए शरीर श्रमित हो जाता है। परन्तु ऐसे श्रम की परवाह नहीं करनी चाहिये। परोपकार परायण मन, ऐसे परिश्रम को परिश्रम मानता ही नहीं है।

कभी ऐसे गांव में जाना होता है कि वहां सुबह, दोपहर और रात्रि में प्रवचन देने पड़ते हैं। परन्तु लोगों की उत्कृष्ट धर्मभावना, अपार भक्ति और सख्त परन्तु स्नेहपूर्ण आग्रह देखकर थकान लगती ही नहीं है !

परन्तु जहाँ पर लोग प्रवचन के समय मौन नहीं रहते, शान्ति नहीं रखते, अनुशासन का पालन नहीं करते, वहां थकान लग जाती है ! वहां दूसरी बार प्रवचन देने की इच्छा नहीं होती है। इसलिये, जिस प्रकार उपदेशक को उपदेश देने में थकना नहीं है उसी तरह श्रोताओं को अनुशासन का पालन करना होता है।

दूसरी महत्व की बात है श्रोताओं के उल्लास की। प्रवचन सुनते हुए श्रोताओं के मुंह पर आनन्द के, उल्लास के भाव उभरते हैं तो वक्ता को श्रम महसूस ही नहीं होता हैं। लेकिन कुछ गाँवों में मैंने 'स्थितप्रज्ञ' श्रोता देखे हैं! एक ही गंभीर मुखमुद्रा बनाये प्रवचन सुनते रहते हैं! उनके मुंह पर कोई भाव—परिवर्तन नहीं होता!

वक्ता परोपकाररसिक चाहिये :

जिस वक्ता के हृदय में परोपकाररसिकता होती है, वह उपदेश देने में थकते नहीं हैं। 'पर-उपकार समो नहीं सुकृत।' यह सूत्र उनके हृदय की दीवार पर लिखा हुआ होता है। वे सहजता से परोपकार की प्रवृत्ति में प्रवर्तमान होते हैं। और, साधु के जीवन में धर्मोपदेश के अलावा दूसरा कौन सा परोपकार का कार्य होता है? तीर्थंकर भगवंतों ने यही श्रेष्ठ परोपकार का कार्य बताया है।

परोपकाररसिक वक्ता सोचकर उपदेश देगा। 'मेरे इस उपदेश से श्रोताओं का हित होगा न? अहित तो नहीं होगा न? मेरा उपदेश जिनाज्ञानुसारी है न?' यह सोचना बहुत आवश्यक होता है। मनचाहा उपदेश देने मात्र से दूसरों पर उपकार नहीं होता है। जिनाज्ञानुसार उपदेश से ही परोपकार होता है। चूँकि इस जगत में अनाथों का आधार जिनवचन ही है। अशान्ति का औषध एक मात्र जिनवचन ही है। इसलिये धर्मोपदेश जिनवचनरूप होना चाहिये।

वक्ता स्व-पर शास्त्रों का ज्ञाता चाहिए :

धर्मोपदेशक को जैन शास्त्रों का और जैनेत्तर शास्त्रों का ज्ञान होना चाहिए। जैनधर्म के सिद्धान्तों का सुचारु बोध होना चाहिये। सिद्धान्तों को समझाने की सुन्दर शैली होनी चाहिये।

जैनेत्तर वैदिक, बौद्ध आदि धर्मो का और ईसाई, इस्लाम आदि धर्मों का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिये। इसके अलावा कुछ प्रसिद्ध विचारकों की विचार-धाराओं का भी ज्ञान होना आवश्यक होता है। इससे जो कोई भी धर्मजिज्ञासा-वाला अथवा धर्म के विषय में वाद-विवाद करनेवाला, उसके पास आये तो उसका समाधान कर सकता है। अपने धर्मशासन का गौरव बढ़ा सकता है।

दूसरे धर्म-दर्शनों के सिद्धान्तों का खंडन करने के लिये भी उनके सिद्धान्तों का सही ज्ञान होना चाहिये। यदि यह ज्ञान नहीं होता है तो दूसरों के सिद्धान्तों के प्रति अन्याय हो जाता है। गलत ढंग से उनके सिद्धान्तों को प्रस्तुत करना घोर अन्याय ही है।

ऐसा अन्याय 'शंकरभाष्य' में श्री शंकराचार्य ने किया है। उन्होंने जैनधर्म के सिद्धान्त 'अनेकान्तवाद' को गलत ढंग से प्रस्तुत किया है। यदि उन्होंने 'अनेकान्तवाद' का यथार्थ अध्ययन किया होता, तो ऐसा नहीं करते। उन्होंने 'अनेकान्तवाद' का अर्थ 'अनिश्चितवाद' कर दिया है!

जबकि जैनाचार्यों ने जहाँ-जहाँ भी अन्य धर्म-दर्शनों के सिद्धान्त प्रस्तुत किये हैं, न्यायपुरस्सर प्रस्तुत किये हैं।

एक बार एक वेदान्ताचार्य विद्वान् पंडित से मेरी बात हुई थी। मैंने कहा : 'आप के आचार्यों को भी अनेकान्तवाद का सहारा तो लेना ही पड़ा है!'

पंडितजी ने कहा : 'कैसे ?'

मैंने कहा : 'देखिये, आप के वेदान्तदर्शन में 'सत्' तीन प्रकार के बताये गये हैं : पारमार्थिक सत्, व्यावहारिक सत् और प्रातिभासिक सत्। क्या ये तीन सत्, तीन अपेक्षाओं से नहीं कहे गये हैं क्या ?

—परमार्थिक दृष्टि से 'आत्मा' ही सत् बतायी,

—व्यवहारिक दृष्टि से संसार के व्यवहारों को सत् बताये. और

—प्रतिभास की दृष्टि से 'रस्सी में साँप' की कल्पना जैसी मिथ्या कल्पनायें बतायी।

यह दृष्टि क्या है ? यही सापेक्षवाद है! यही अनेकान्तवाद है!

पंडितजी अनाग्रही थे। उन्होंने यह बात सुनकर प्रसन्नता व्यक्त की। और जब उनको 'षड्दर्शन समुच्चाय', 'स्याद्वाद मंजरी', 'रत्नाकर अवतारिका' वगैरह ग्रन्थों में प्रस्तुत बौद्ध, वैदिक वगैरह के मंतव्य बताये तब वे सचमुच आश्चर्य में डूब गये। जैनाचार्यों ने अन्य दर्शनों के सिद्धान्तों का खण्डन अवश्य किया है, परन्तु प्रामाणिकता से किया है।

जैनधर्म के ही साधु-साध्वी अन्य दर्शनों का अध्ययन करते हैं। प्रायः और कोई भी साधु जैनधर्म के सिद्धान्तों का अध्ययन नहीं करते हैं।

उपसंहार :

कहने का तात्पर्य यह है कि सदैव उपदेश देना श्रेयस्कर है। इससे न मात्र परोपकार होता है, स्वोपकार भी होता है। टीकाकार महर्षि कहते हैं—

"आत्मानं परं च हि हितोपदेष्टाऽनुगृह्णाति"

हितदृष्टि से उपदेश देनेवाला उपदेशक स्वयं पर और दूसरों पर अनुग्रह करता है।

उपदेशक को 'कर्मनिर्जरा' तो होती ही है, विशेष में उसका धर्म-विषयक चिन्तन-मनन भी बढ़ता है। इसलिये इस जगत को पापों से मुक्त करने हेतु धर्म का उपदेश सदैव देते जाना है। धर्म से ही अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त होता है। चार पुरुषार्थ में धर्म ही प्रधान पुरुषार्थ है, इसका ही उपदेश देते रहना, जगत् पर श्रेष्ठ उपकार है।

With best compliments from :

R. C. BOTHRA & COMPANY PVT. LTD.

Steams Agents, Handling Agents, Commission Agents
& Transport Contractors

Regd. Office :
2, CLIVE GHAT, STREET,
(N. C. Dutta Sarani)
6th Floor, Room No. 6
CALCUTTA-700 001
Phone : 220-6702, 220-6400
Fax : (91) (33) 220-9333
Telex : 21-7611 RAVI IN

Vizag Office : 28-2-47 Daspalla Centre
Vishakhapatnam-530020
Phone : 69208/63276
Fax : 91-0891-569326
Gram : BOTHRA

वसुदेवहिंडी और बृहत्कथाश्लोकसंग्रह

(पूर्वानुवृत्ति)

गणिकाओं की उत्पत्ति—राजा भरत ने समुद्रपर्यन्त मिलने वाली कान्ताओं को एकत्र कर, अन्त में उन सबके साथ विवाह किया। लेकिन जिस स्त्री का सर्वप्रथम उसने पाणिग्रहण किया, उसी से वह सन्तुष्ट हो गया। शेष को आठ गणों के सुपुर्द कर दिया। प्रत्येक गण में प्रमुख स्त्री को राजा ने आसन छत्र और चामर की अनुज्ञा प्रदान की। जो गणों में अन्यों से महानतम थीं उन्हें महागणिका शब्द से सम्बोधित किया गया। गणमुख्य गणिकाओं के एक गण में कलिंगसेना उत्पन्न हुई। मदनमंजुका उसी की कन्या है।

मदनमंजुका की कहानी—एक दिन अपनी माता कलिंगसेना को राजकुल में जाती देख मदनमंजुका ने भी जाने के लिए बार-बार अनुरोध किया। कन्या का बहुत आग्रह देख, उसे आभरणों से सज्जित कर वह राजदरबार में ले गयी। वहाँ से लौट आने पर उसके कपोल, नयन और अधरों में सन्तोष दिखायी दिया। अपनी सखियों के बीच बैठकर वह राजदरबार की कथाएँ सुनाती। अपनी माता को राजदरबार में जाती देख वह भी जाने के लिए उद्यत हो जाती। माता ने समझाया—बेटी ! राजाज्ञा के बिना वहाँ जाना ठीक नहीं, क्योंकि राजा लोग क्षीण-स्नेही और कठोर होते हैं। माता के वचन सुनकर वह घर लौट आई। निद्रा और भोजन का त्याग कर उसने शैया की शरण ग्रहण की। नींद का बहाना कर अपनी सखियों को उसने बिदा कर दिया। वह राजकुल की तरफ मुँह कर, अँजलि बाँध जन्मान्तर में वहाँ की वधू बनने की अभिलाषा करने लगी गले में दुकूल पाश बाँध उसने अपने आपको खूंटी पर लटका दिया। मुद्रिका-लतिका ने जल्दी से उसका वह कालपाश हटा, शैया पर लिटाकर पंखे से हवा की जिससे वह होश में आ गयी। उसने बताया कि जब वह राजकुल में गयी थी तो राजा ने उसे आदरपूर्वक अपने दक्षिण उरु पर बैठाया था, उसके वाम उरु पर राजकुमार आसीन था। मेरी नजर राजकुमार पर पड़ी और वह मेरे हृदय में बैठ गया। तभी से निर्धूम अग्नि मेरे अन्तस्तल में प्रज्वलित हो रही है। मेरे दुःख का यही कारण है। मुद्रिकालतिका ने उसकी माता के पास पहुंचकर यह समाचार सुनाया। उपाय सोचा गया—राजकुमार के परम मित्र गोमुख[1] को वेश्यालय में प्रवेश कराया जाय, जहाँ वह राजकुमार को भी साथ लेकर आयेगा।

---

१. वसुदेवहिंडी में बुद्धिसेन है।

स्वयं नरवाहनदत्त ने मदनमंजुका के पास जाकर उसे ढाढ़स बंधाया और कहा कि राजकुमार स्वयं शीघ्र ही उपस्थित हो उसे प्रणाम करेगा। नरवाहनदत्त कुमारवाटिका में पहुँच वहाँ से उच्छिष्ट मोदक[१] आदि लेकर लौटा उसने कहा कि राजकुमार ने अपने हाथ के मोदक उसके लिए भेजे हैं। लेकिन मदनमंजुका को विश्वास न हुआ। मुद्रिकालतिका ने नरवाहनदत्त से कहा कि महानागरक होकर भी आप उस बिचारी को ठगना चाहते हैं![२] मदनमंजुकालाभ नामक ११वें सर्ग में मदनमंजुका का राजकुमार के साथ मिलाप हो जाता है।[३]

४. श्रेष्ठी पुत्र की कथा

(अ) वसुदेवहिंडी : चारुदत्त की कथा : श्रमणोपासक भानू नामक श्रेष्ठी की भार्या का नाम भद्रा था। उसके कोई संतान नहीं थी। एक बार आकाशचारी चारु नामक अणगार का आगमन हुआ। भद्रा ने हाथ जोड़कर विनय की महाराज! हम लोगों के धन की कमी नहीं, लेकिन उसका भोगने वाला कोई पुत्र नहीं है। समय व्यतीत होने पर भद्रा ने पुत्र को जन्म दिया। चारु मुनि के कथन से वह पैदा हुआ था, इसलिए उसका नाम रक्खा गया चारुदत्त।[४]

चारुदत्त बड़ा हुआ। उसके पाँच मित्र थे—हरिशिख, वराह, गोमुख तपंतक और मरुभूतिक। उसने कलाओं की शिक्षा ग्रहण की। मित्रों के साथ वह समय व्यतीत करने लगा।

एक बार कौमुदी महोत्सव के समय श्रेष्ठीपुत्र चारुदत्त हरिशिख, वराह, गोमुख, तपंतक और मरुभूति नामक अपने मित्रों को लेकर अंगमंदिर उद्यान में पहुँचा वहाँ से सब रजतवालुका नदी के किनारे आये। मरुभूति ने नदी में उतर

---

१. वसुदेवहिंडी में भुत्तसेसे मोदके' पाठ है।

२. १०. ३८-२७४

३. एस० एन० दासगुप्ता ने मदनमंजुका के प्रेम को उत्कृष्ट कोटिका बताते हुए उसकी तुलना मृच्छकटिक की वसन्तसेना के साथ की है। हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, क्लासिक पीरियड, पृ० १००।

४. वृहत्कथा श्लोकसंग्रह १८-४-१० के अनुसार, सानुदास चंपा निवासी मित्रवर्मा नामक कणिक और उसकी भार्या मित्रवती का पुत्र था। एक दिन सानुनामक दिगम्बरमुनि भिक्षा के लिये आये। उन्होंने ऋषभभाषित धर्म का उपदेश दिया। भावी पुत्र के उत्पन्न होने की उन्होंने भविष्यवाणी की। सानु मुनि के आदेश से पुत्रोत्पति होने के कारण पुत्र का नाम सानुदास रखा। वसुदेवहिंडी पृ० १३३-३४

कर चारुदत्त से कहा—तुम क्यों नहीं आते ? क्यों बिलंब कर रहे हो ? गोमुख ने उत्तर दिया—वैद्यों का कहना है कि रास्ता चलकर एकदम नदी के जल में प्रवेश नहीं करना चाहिए। सब लोग कमलपत्रों को तोड़कर स्वच्छन्द भाव से पत्रच्छेद्य से क्रीड़ा करने लगे। क्रीड़ा करते-करते दूसरे नदी स्रोत पर पहुँच गये। गोमुख ने दोनों के आकार के पद्मपत्र को जल में तैरा दिया। इसमें थोड़ी रेत डाली, और यह नाव की भाँति तैरने लगा। मरुभूति ने दूसरा पद्मपत्र लिया और उसमें बहुत-सा रेत भर दिया। भारी होने से पद्मपत्र की यह नाव डूब गई सब मित्र हँसने लगे। उसने दूसरा पद्मपत्र जल में डाला। लेकिन प्रवाह की शीघ्रता के कारण नाव के जल्दी चलने से गोमुख जीत गया। पद्मपत्र की नाव बहुत दूर-चली गयी।

पुलिनतट पर, महावर से रंगे किसी युवती के पदचिह्न देखकर मरुभूति को आश्चर्य हुआ।

गोमुख—इसमें आश्चर्य की कौन बात ? ऐसे जलप्रदेश अनेक हो सकते है ?

मरुभूति—अरे, यह देखो, दो पैरों के निशान !

गोमुख—इसमें क्या हुआ ? हमारे चलने-फिरने से भी तो पैरों के सैकड़ों निशान बन जाते हैं !

मरुभूति—लेकिन भई, हमारे पैरों के निशान तो आगे-पीछे पैरों के रखने से बनते हैं, और ये निशान बीच-बीच में टूटे हैं ! पता नहीं लगता, कहाँ से शुरू हुए हैं और कहाँ इनका अन्त हुआ है ! जरा ध्यान से देखो !

हरिशिख—इसमें क्या ? कोई पुरुष नदी तट पर खड़े हुए वृक्ष पर चढ़, एक शाखा से दूसरी शाखा पर पहुँच गया और जब उसने देखा कि वह शाखा कोमल हैं, तो उस पर से वह कूद पड़ा और फिर से वृक्ष पर चढ़ गया।

गोमुख—(कुछ विचार कर) यह नहीं हो सकता। यदि वह वृक्ष के ऊपर से कूदा होता तो उसके हाथ-पैर के संघर्ष के कारण नीचे गिरे हुए फूल और पत्ते नदीतट पर और जल में बिखर जाते।

हरिशिख—तो फिर ये पैर किसके होने चाहिए ?

गोमुख—किसके क्या ? किसी आकाशगामी के होंगे।

हरिशिख—आकाशगामी के किसके ? किसी देव के ? किसी राक्षस के, चारण मुनि के ? या फिर किसी ऋद्धिधारी ऋषि के ?

गोमुख—देवों के तो इसलिए नहीं हो सकते कि वे भूमि से चार अंगुल ऊपर विहार करते हैं। राक्षसों का शरीर स्थूल होने के कारण उनके पैर भी बड़े होते हैं। पिशाच जलमय प्रदेश से डरते हैं।१ ऋद्धिधारी ऋषियों के कृशगात्र होने के कारण उनके पैरों का मध्यभाग उठा हुआ होता है। चारण मुनि जलचर जीवों की रक्षा के लिये जलवाले प्रदेश में परिभ्रमण करते नहीं।

हरिशिख—तो ये फिर किसके हैं? किसी के तो होंगे?

गोमुख—किसी विद्याधर के।

हरिशिख—विद्याधरी के क्यों नहीं?

गोमुख—पुरुष बलवान होता है, वह उत्साह से गमन करता है। उसका वक्षस्थल विशाल होने के कारण जब वह चलता है तो उसके पैर आगे से कुछ दबे होते हैं। स्त्रियों के नितम्ब भारी होने से चलते समय उनके पैर पीछे से दबे होते हैं। इसलिए ये पैर विद्याधरी के नहीं हो सकते।

गोमुख—लगता है, वह विद्याधर कोई बोझ लिये हुए था।

हरिशिख—कौन सा बोझ? किसी पर्वत का? वृक्ष का अथवा पकड़कर लाये हुए अपराधी शत्रु का।

गोमुख—यदि यह भार पर्वत का होता तो पर्वत के बोझ के कारण उसके पैर रेत में धँस गये होते। यदि वृक्ष का होता तो नदी तट पर दूर तक फैली हुई शाखाओं के चिह्न बने होते। और फिर ऐसे रमणीक स्थान पर किसी शत्रु को कोई लायेगा ही क्यों?

हरिशिख—तो फिर यह बोझ किसका हो सकता है?

गोमुख – किसी स्त्री का?

हरिशिख—लेकिन स्त्री का इसलिए संभव नहीं कि विद्याधरियाँ आकाश गामिनी होती हैं।

गोमुख—विद्याधर की यह प्रिया भूमिगोचरी थी। उसके साथ वह रमणीय स्थानों में विहार किया करता था।

---

१. यक्ष राक्षस और पिशाचों का प्रभाव दिन में सूर्य के तेज से पराभूत हो जाता है। जहाँ देवताओं और ब्राह्मणों का समुचित रूप से पूजन नहीं किया जाता और भ्रष्ट रूप से भोजन किया जाता है, वहाँ ये प्रबल हो जाते हैं। जहाँ निरामिष भोजी अथवा सती-साध्वी स्त्री रहती है, वहाँ वे नहीं जाते, तथा पवित्र, शूर और अबुद्ध व्यक्तियों को नहीं छेड़ते।

कथासरित्सागर (१. ७. ३२-७)

हरिशिख—यदि वह उसकी प्रिया थी तो उसने उसे विद्याएँ क्यों नहीं *सिखायी ?*

गोमुख—वह ईर्ष्यालु था। सन्देहशील होने के कारण वह सोचता था कि विद्याएँ प्राप्त कर कहीं वह स्वच्छन्दाचारी न हो जाये।

हरिशिख—कैसे जानते हो कि वह विद्याधरी नहीं थी ?

गोमुख—स्त्रियों का अधोभाग भारी होता है और बायें हस्त से प्रणय चेष्टा करने में वे दक्ष होती है। इससे उसका बायाँ पैर कुछ ऊपर उठ गया है।

हरिशिख—यदि स्त्री उसके साथ थी तो उसके साथ रमण किये बिना वह कैसे चला गया।

गोमुख—प्रकाश होने के कारण जल से घिरे हुए इस प्रदेश को उसने रति के योग्य नहीं समझा। और पैरों के अविकीर्ण होने से लगता है कि वह कहीं पास में ही होना चाहिये। यह प्रदेश अत्यन्त रमणीय है, इसे छोड़कर भला वह कहाँ जा सकता है। चलो, उसके पदचिह्नों से उसका पता लगायें।

कुछ दूर चलने पर उन्हें भ्रमरों से आच्छन्न सप्तपर्ण का वृक्ष दिखायी दिया।

गोमुख—देखो, यहाँ आकर स्त्री ने वृक्ष की शाखा पर लगा हुआ पुष्प गुच्छ देखा। उसे न पा सकने के कारण उसने अपने प्रियतम से गुच्छे को तोड़कर देने का अनुरोध किया।

चारुदत्त—यह तुमने कैसे जाना ?

गोमुख—यह देखो, पुष्पगुच्छ की इच्छा करती हुई, एड़ी बिना स्त्री के पैर दिखायी दे रहे हैं। और जानते हो विद्याधर लंबा था, इसलिए बिना विशेष प्रयत्न के ही उसने पुष्पगुच्छ को तोड़ लिया। तट पर उसके अभिन्न रेखा बाले ये पैर दिखायी दे रहे हैं, लेकिन इस गुच्छे को उसने अपनी प्रिया को नहीं दिया। और लगता है, उन्हें यहाँ से गये हुए बहुत समय नहीं हुआ है। क्योंकि पुष्पगुच्छ के अभी हाल में तोड़े हुए कोने के कारण, पुष्प की डंठल में रस टपक रहा है।

हरिशिख—ठीक है, पुष्पगुच्छ को अभी तोड़ा गया होगा। लेकिन यह कैसे जाना कि उसे विद्याधर ने अपनी प्रिया को नहीं दिया। प्रिया के मांगने पर तो देना ही चाहिए था।

गोमुख—काम प्रणय से चंचल हो उठता है। लगता है कि उस स्त्री ने अपने प्रियतम से पहले किसी चीज की याचना नहीं की। अतएव अपनी प्रिया को याचना से चंचल देख, विद्याधर को बड़ा अच्छा लगा। वह भी 'दो ना, प्रिय दो ना' कहती हुई उसके चारों ओर फिरकी की भाँति फिरने लगी। यह

देखो, विद्याधर के पैरों के चारों ओर उसके पैर दिखायी दे रहे हैं। चारुस्वामी इससे वह अविद्याधरी कुपित हो गयी।

हरिशिख—इस बात का पता कैसे लगा ?

गोमुख—यह देखो, क्रोध के आवेश में उठे हुए उसके अस्तव्यस्त पैर। और देखो इसके पास ही ये पैर विद्याधर के हैं जो उसके पीछे-पीछे चल रहा है। यह देखो जल्दी-जल्दी रक्खी हुई उसकी पदपंक्ति उसका मार्ग रोक रही है और देखो, वह अविद्याधरी अपनी हँसी रोककर इधर से गयी और उधर से वापिस लौटी। उसके गुस्सा हो जाने पर विद्याधर ने वह पुष्पगुच्छ उसे दे दिया। लेकिन उसने पुष्पगुच्छ को फेंककर विद्याधर की छाती पर मारा। और जानते हो उसके क्रोध के साथ ही वह गुच्छ भी बिखर गया! यह देखकर विद्याधर अपनी प्रिया के पैरों में गिर पड़ा। यहाँ उसके पैरों के समीप विद्याधर के मुकुट से दबा हुआ रेत दिखायी दे रहा है। बस फिर क्या था ? सुकुमार गुस्से वाली उसकी प्रिया जल्दी ही प्रसन्न हो गयी। यह देखो, नदी तट पर भ्रमण करते हुए उन दोनों के पैर! चारुस्वामी! और सुनिए, जब वह विद्याधर के मुख पर अपनी दृष्टि गड़ायी हुई थी तो उसके पैर में कंकड़ी चुभ गई। विद्याधर ने जल्दी से उसका पैर ऊपर उठा लिया। वेदना के कारण उसने विद्याधर के कन्धे का सहारा लिया। यह देखो, यह एक पैर अविद्याधरी का है और ये दो विद्याधर के। विद्याधर ने उसके पैर में से खून से गीला हुआ रेत निकाल कर फेंक दिया।

हरिशिख—जिसे तुम खून कह रहे हो, कहीं वह महावर तो नहीं ?

गोमुख—भई, महावर का रस कड़वा होता है; उस पर मक्खियाँ नहीं बैठती। यह तो हाल के लगे हुए घाव में से दुर्गन्धि-युक्त, मधुर और मांस में से टपकने वाला खून है, इसलिये इस पर मक्खियाँ भिनभिना रही हैं। चारुस्वामी! और फिर वह विद्याधर उसे अपनी बाहुओं में भरकर ले गया।

हरिशिख—यह कैसे पता चला ?

गोमुख—देखो, स्त्री के पैर यहाँ दिखाई नहीं देते जबकि पुरुष के पैर साफ दिखाई दे रहे हैं। तथा चारुस्वामी! मेरा ख्याल है कि वह विद्याधर अपनी प्रेमिका के साथ सामने के लताघर में होगा। आइए, हम यहीं ठहर जाएँ। एकांत वास करते हुए उन्हें देखना ठीक नहीं।

कुछ समय पश्चात् लतागृह में से अपनी सहचरी के साथ एक मोर बाहर निकला।

गोमुख—चारुस्वामी! देखिए, इस लतागृह में विद्याधर नहीं है।

हरिशिख—अब तक तो कहते आ रहे थे कि अपनी प्रिया के साथ विद्याधर इस लतागृह के अन्दर है, अब कहने लगे नहीं है।

गोमुख—देखो, यह मोर निःशंक होकर अन्दर से निकला है। यदि कोई मनुष्य अन्दर होता तो वह ऐसा नहीं करता।

गोमुख के वचन को प्रमाण मान, चारुदत्त ने अपने मित्रों के साथ लतागृह में प्रवेश किया तो वहाँ थोड़ी देर पहले उपर्युक्त कुसुमों की शैया देखी।

गोमुख—विधाधर को यहाँ से गये हुए बहुत समय नहीं हुआ है। ये उसके जाने के पैर दिखायी दे रहे हैं। वह यहाँ अवश्य लौटकर आयेगा। यह देखो, वृक्ष की शाखा में लटका हुआ चीते के चमड़े से बना हुआ उसका कोशरत्न (थैली) और खड्ग दिखाई दे रहे हैं। इन्हें लेने वह अवश्य आयेगा।

विद्याधर के पदचिह्नों को देखते हुए गोमुख ने कहा—चारुस्वामी! यह विद्याधर किसी महान् संकट में पड़ गया मालूम होता है। पता नहीं वह जीता भी है या नहीं?

चारुस्वामी—क्यों?

गोमुख—क्या तुम इन दो और पैरों को नहीं देखते? पता नहीं लगता कि ये पैर कहाँ से आये हैं, तथा पृथ्वी पर से आकाश में उड़ जाने के कारण रेत उड़ी हुई जान पड़ती है। लगता है यहाँ इस विद्याधर को किसी ने गिरा दिया है। यह देखो, उसे खींचकर नीचे डालने से उसके शरीर की आकृति बनी हुई है। यहाँ स्त्री के पैर भी नीचे पड़े हुए दिखायी दे रहे हैं। आइए, हम लोग इन पदचिह्नों का अनुकरण करते हुए आगे बढ़ें।

आगे चलने पर इधर-उधर बिखरे हुए आभूषण तथा वायु से प्रकंपित पीले रंग का क्षौम वस्त्र दिखायी दिया।

गोमुख—चारुस्वामी! जब यह विद्याधर निश्चित भाव से बैठा था तो किसी शत्रु ने उसपर आक्रमण किया। भूमिगोचरी होने के कारण उसकी भार्या किसी प्रकार का प्रतिकार करने में असमर्थ थी।

चारुदत्त ने मरुभूति को क्षौम वस्त्र, आभूषण, चर्मरत्न और खड्ग उठाकर ले चलने को कहा जिससे कि विद्याधर की वस्तुएँ उसे वापिस लौटाई जा सकें।

आगे चलने पर सेही के बिल में लटकते हुए बाल दिखायी पड़े।

गोमुख ने हरिशिख से उन्हें सूँघने को कहा। सूँघने पर पता लगा कि उनकी गंध स्थित है और गर्मी में रहने के कारण उनमें से सुगन्ध की मानो वर्षा हो रही है।

गोमुख—चारुस्वामी जो कोई दीर्घायु होता है, उसके केशों और वस्त्रों में ऐसी सुगन्ध होती है। यह विद्याधर दीर्घायु और उत्तम जान पड़ता है। यह राज्याभिषेक का अधिकारी होना चाहिए।

आगे बढ़ने पर देखा कि वह विद्याधर कदम्ब वृक्ष पर पाँच लोहे की कीलों से बिंधा हुआ पड़ा है—एक कील उसके कपाल में, दो हाथों में और दो उसके पैरों में। लेकिन फिर भी उसके मुख की कांति में कोई अन्तर नहीं दिखायी पड़ा, उसके शरीर की छवि सौम्य थी, हाथों और पैरों में से रक्त नहीं बह रहा था, और तीव्र वेदना होने पर भी उसका श्वासोच्छ्वास मंद नहीं पड़ा था।

उसके चर्मरत्न को खोलकर देखा तो उसमें चार औषधियाँ मौजूद थीं। एक से शल्यों को निकाला (विशल्यकरणी) दूसरी से जिलाया (संजीवनी) और तीसरी से घावों को अच्छा किया (संरोहणी)।

विशल्यकरणी औषधि को उसके कपाल में चुपड़ने से कपाल में ठोकी हुई कील बाहर निकलकर गिर पड़ीं। फिर उसके दोनों हाथ और पैरों को छुड़ाया। पीताम्बर युक्त कदलीदल के पत्र पर उसे सुलाया। उसके घावों में संरोहणी छिड़की। कदलीपत्रों की वायु और जलकणों द्वारा उसे होश में लाया गया।

होश में आते ही विद्याधर एकदम दौड़कर चिल्लाने लगा—अरे दुराचारी धूमसिंह ! ठहर ! तू भागकर कहाँ जायगा ? लेकिन वहाँ कोई न था, इसलिए व्यर्थ ही गर्जना करने के कारण वह लज्जित होकर बैठ गया : तत्पश्चात् सरोवर में स्नान कर उसने वस्त्राभूषण धारण किये।

चारुदत्त और उसके साथियों के समीप आकर वह कहने लगा—अरे ! मुझे मेरे शत्रु ने बाँध दिया था, मुझे किसने छुड़ाया ?

गोमुख ने उत्तर दिया—हमारे मित्र इभ्यपुत्र चारुस्वामी ने।

तत्पश्चात् विद्याधर ने अपनी रामकहानी सुनाई—

मेरा नाम अमितगति है—शिवमंदिर नगर का निवासी, पिता महेंद्रविक्रम, माता सुयशा। एक बार धूमसिंह और गौरीपुंड नामक अपने मित्रों के साथ वैताढ्य पर्वत की तलहटी में सुमुख नामक आश्रम में गया। वहाँ मेरा मामा क्षत्रिय ऋषि हिरण्यलोम तापस रहता था। उसके अनुरोध पर उसकी रूपवती कन्या सुकुमालिका के साथ मैंने विवाह कर लिया। वह कभी स्वच्छंदारी न बन जाये, इसलिए मैंने उसे विद्याओं की शिक्षा नहीं दी।

धूमसिंह मेरी अनुपस्थिति में सुकुमालिका को बहकाने का प्रयत्न करता। वह मुझसे सब बात कहती लेकिन मैं विश्वास न करता, यद्यपि मेरा मन शंकित हो गया था।

एक बार की बात है, स्नान आदि करने के पश्चात् मेरी पत्नी और धूमसिंह मेरे केश संवार रहे थे। मेरे हाथ में दर्पण था। धूमसिंह हाथ जोड़कर मेरी पत्नी से अनुनय-विनय कर रहा था। दर्पण सामने होने से मुझे पता चल गया। क्रोध में आकर मैंने धूमसिंह को ललकारा—यही तेरी मित्रता है! यहाँ से भाग जा नहीं तो मार डालूँगा।

धूमसिंह वहाँ से चला गया। उसे फिर मैंने नहीं देखा।

आज मैं अपनी पत्नी के साथ इस सुन्दर नदी तट पर आया। नीचे उतरने पर इस स्थान को मैंने रति के योग्य नहीं समझा, इसलिए वहाँ से चला आया।

तत्पश्चात् प्रणयकोप और प्रसादन के रमणीय प्रसंगों से लगाकर लतागृह से बाहर आने तक सारी कहानी सुना दी। विद्यारहित स्थिति में, मेरे शत्रु धूमसिंह ने मुझे बांध लिया और विलाप करती हुई सुकुमालिका को वह उठाकर ले गया।

अब तुम लोगों ने अपनी बुद्धि और औषधि के प्रभाव से मुझे जीवित किया है। अतएव चारुस्वामी! आप मेरे बंधु हैं। आज्ञा दीजिए, आप लोगों की क्या सेवा करूँ? मुझे शीघ्र ही जाने की आज्ञा दें। मैं जाकर अपनी पत्नी की रक्षा करूँगा, कहीं वह मेरे जीवन की निराशा से अपने प्राणों को त्याग न दे।

इतना कहकर अमितगति वहाँ से चला गया।[१]

(आ) बृहत्कथाश्लोकसंग्रह : सानुदास की कथा : गोमुख सरोजपत्र को अपने नाखूनों से छेदने लगा। पत्रच्छेद्य को नदी के जल में तैरा दिया। तत्पश्चात् गोमुख ने पत्रच्छेद्य के लक्षण प्रतिपादित किये (व्यस्त्र, चतुस्त्र, दीर्घ और वृत्त)।

मरूभूतिक ने एकदम आकर कहा—आर्यपुत्र! कितना बड़ा आश्चर्य है? देखा आपने?

हरिशिख—कूप के कच्छप के समान मोटी बुद्धि वाले तुम जैसों को सब जगह आश्चर्य ही-आश्चर्य दिखायी देता है।

इसपर मरुभूतिक ने उसे पुलिन के दर्शन कराये।

हरिशिख ने हँस कर कहा—उस चक्षुवान् पुरुष को नमस्कार है जिसे पुलिन भी आश्चर्यकारी लगता है! जल नीचे से बहता है और जो रेतीला

---

१. पृ० १३३-४०

स्थान है, वह पुलिन बन जाता है—यदि इसमें कोई आश्चर्य लगता है तो मूर्ख ! तेरे जल में कौनसा दोष हुआ ?

मरूभूति—अरे ! भई ? पुलिन को कौन आश्चर्यकारी कहता है। पुलिन पर जो आश्चर्यकारी है, उसे भी तो जरा देखो।

हरिशिख—पुलिन पर रेत है, और क्या ? क्या रेत का होना भी आश्चर्य है ?

यह सुनकर गोमुख बोला—अरे ! भद्रमुख मरूभूतिक का क्यों मजाक उड़ाते हो ? पुलिन पर मैंने भी दो पैर देखे हैं।

हरिशिख—यदि दो पैरों का देखना आश्चर्य कहा जा सकता है तो चतुर्दश कोटि पदों का देखना तो और भी आश्चर्य की बात होगी।

गोमुख—एक के पीछे एक पड़े हुए कोटि पदों का देखना कोई आश्चर्य की बात नहीं, लेकिन इन दोनों पैरों में अनुक्रम नहीं है, यही आश्चर्य है।

हरिशिख—हो सकता है कि पैरों के शेष चिह्नों को हाथ से मिटा दिया गया हो। नदी तट पर खड़े हुए वृक्ष की जो शाखा पुलिन तक आ रही है, संभवतः उसे पकड़ कोई नागरिक ऊपर चढ़कर फिर नीचे उतर आया हो। उसी के ये पैर होंगे।

गोमुख—लेकिन दूर तक फैले हुए पत्तों वाली शाखा को पकड़कर यदि वह ऊपर चढ़कर नीचे उतरा होता तो पृथ्वी पत्तों से आकीर्ण हो जाती।

हरिशिख—तो फिर ये पैर किसके होंगे ?

गोमुख—किसी दिव्य पुरुष के होने चाहिए ?

हरिशिख—दिव्य पुरुष के किसके ?

गोमुख—देखो, किसी देव के तो इसलिए नहीं हो सकते कि वे पृथिवी का स्पर्श नहीं करते। यक्ष और राक्षस स्थूल शरीर होते हैं, यदि ये पैर उनके होते तो पुलिन पर अन्दर तक धँस जाते। तप के कारण कृश शरीर वाले सिद्धों और ऋषियों के पैरों की उंगलियां स्पष्ट दिखायी नहीं पड़तीं। अतएव ये पैर किसी मनुष्य के ही हो सकते हैं। पुरुषों के पैर आगे से और स्त्रियों के पीछे से दबे हुए होते हैं। और देखो लगता है कि जिस पुरुष के पैर हैं वह कोई भार उठाये हुआ था।

हरिशिख—वह कौन सा भार उठाये था ? किसी शिला का ? वृक्ष का ? अथवा किसी शत्रु का वह भार था ?

गोमुख—देखो, यदि वह भार शिला का होता तो उसके पैर अन्दर तक धँस गये होते। यदि वृक्ष का होता तो पृथ्वी पर पत्ते फैल गये होते। शत्रु का भार इसलिए नहीं कि इतने रमणीय स्थान पर कौन शत्रु को लेकर आयेगा।

अतएव असिद्ध विद्यावाली विद्याधरी का ही यह भार है। विद्याधर ने उसके जघन पर अपना दक्षिण हाथ रक्खा जिससे उस कामी विद्याधर का दक्षिण पैर अन्दर चला गया। तुम उसके सिर से गिरे हुए मालती के पुष्पों से अवकीर्ण स्थान को नहीं देख रहे हो ?

इधर-उधर देखने से जल के समीप अन्यत्र भी स्त्री-पुरुष के पैर दिखायी दिये।

गोमुख ने कहा—वह नागरक यहीं कहीं होना चाहिए।

हरिशिख—क्यों ?

गोमुख—दूसरे के चित्तानुवृत्ति और अपने चित्त के निग्रह को नागरकता कहा गया है। अतएव मंथर गति से गमन करती हुई कामिनी का अतिक्रमण करके वह नहीं जा सकता।

उनके पादचिह्नों का अनुगमन करते हुए वे आगे बढ़े। भ्रमरों से गुंजायमान सप्तपर्ण को उन्होंने देखा। इस वृक्ष के नीचे उन दोनों के एकान्त विहार करते समय जो कुछ बीता उसका वर्णन गोमुख ने किया।

गोमुख—यहाँ विद्याधर की पत्नी जब कुपित हो गयी तो विद्याधर ने उसे प्रसन्न किया। कुसुमवाले पल्लवों द्वारा निर्मित इस बिस्तर को देखो। क्लांत होकर वह यहाँ बैठ गयी। उसके जघन के संचरण से पल्लव जर्जरित हो गये। विद्याधर ने गुरुत्रिक हाथ में ले जघन में स्थापित किया और उसे लगा कि मानो यह पृथ्वी उसके चरणों में लोट रही है !

वहाँ से वह उठ कर चली गयी। आइए, उन दोनों के पदचिन्हों का अनुगमन करते हुए आगे बढ़ें।

उन दोनों ने कामिनियों के रम्य स्थान, चन्द्र, सूर्य अग्नि और वायु से अस्पृष्ट माधवी लता के कुंज में प्रवेश किया। प्रच्छन्न एवं रमणीय इस स्थान को छोड़कर वह कैसे जा सकता था ? सुखपूर्वक आसीन उनका दर्शन करना उचित नहीं, इसलिए आइए, हम लोग यहीं ठहर जायें।

तत्पश्चात् लतागृह को देखकर सिर हिलाकर गोमुख ने कहा—वह कामी यहाँ नहीं है।

हरिशिख—अभी तो कहते थे वह है, अब कहते हो नहीं !

गोमुख—क्या तुम अन्धे हो जो माधवी लतागृह से निर्भयतापूर्वक मूक भाव से निकलते हुए शिखण्डिमिथुन को तुमने नहीं देखा ? यदि कोई अन्दर होता तो वह आर्तस्वर करता हुआ उड़कर वृक्षों के कुञ्ज में छिप जाता। देखो यह पल्लवों का बिस्तर बिछा हुआ है। वृक्ष की शाखा पर हार, नुपूर, मेखला, अन्यत्र अरुप वर्ण का क्षोमवस्त्र और वहीं उसका चर्मरत्न दिखाई दे रहा है।

ये सब चीजें उन लोगों ने उठा ली जिससे कि विद्याधर के मिलने पर उसे दी जा सके।

गोमुख-अवश्य ही किसी शत्रु ने उसकी कान्ता का अपहरण कर लिया है। परवशता के कारण उन दोनों को अपने आभूषण आदि छोड़कर जाना पड़ा। वह विद्याधर दीर्घायु है क्योंकि उसके केश स्निग्ध हैं और वृक्ष की शाखा पर लटके रहने पर भी उनमें सुगन्ध आ रही है।

तत्पश्चात् कुछ दूर चलने पर किसी कदंब वृक्ष के स्कंध में लोहे की पाँच कीलों से बिधे हुए विद्याधर को उन्होंने देखा।

उसके चर्मरत्न में पांच औषधियां दिखाई दीं— विशल्यकरणी, मांसविवर्धनी व्रणसंरोहणी, वर्णप्रसादनी और मृतसंजीवनी।

इतने में गोमुख ने आकर सूचना दी कि आर्यपुत्र (नरवाहनदत्त) के प्रसाद से विद्याधर जी उठा है।

औषधियों के प्रभाव से स्वस्थ होकर विद्याधर बोला— बंधन में बंधे हुए मुझको किसने जिलाया है? गोमुख ने उत्तर दिया—हमारे आर्यपुत्र ने। विद्याधर ने मुक्तकण्ठ से कृतज्ञता का भाव प्रदर्शित किया।

तत्पश्चात् उसने अपनी रामकहानी सुनाई—

मैं कौशिक मुनि का पुत्र अमितगति नाम का विद्याधर हूँ।

हिमालय पर्वत के शिखर पर कौशिक नाम का मुनि रहता था। नन्दन वन का त्याग करने वाली बिन्दुमती ने बहुत काल तक उसकी आराधना की। कौशिक मुनि ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया। उसके दो संतानें हुई एक मैं और दूसरी मेरी बहन मत्सनामिका।

अंगारक और व्यालक नामक अपने मित्रों के साथ मैं समय व्यतीत करने लगा। कांश्यपस्थलक नामक नगर में मैंने कुसुमालिका कन्या को देखा। सुन्दर होने के कारण वह मेरे मन में बस गयी। अपने मित्रों के साथ कुसुमालिका को लेकर नदी किनारे पर्वत के वृक्षकुंज में रति के लिए गया। मैंने देखा कि अंगारक टेढ़ी गर्दन करके ताक रहा था। अंगारक ताड़ गया और वह चुपके से भाग खड़ा हुआ।

मेरी समझ में नहीं आया कि अपनी कान्ता को लेकर मैं कहाँ जाऊँ। वहां से मैं पर्वत से बहने वाली इस नदी के पुलिन पर आया वहाँ से इस लतागृह में प्रवेश किया। उसके आगे का वृतान्त आप लोगों को ज्ञात ही है।

आप लोग मुझे संकट के समय स्मरण करें—यह कहकर प्रणामपूर्वक वह विद्याधर अंगारक का पीछा करने के लिए आकाश में उड़ गया।

५. गंधर्वदत्ता का विवाह

(अ) **वसुदेवहिंडी** : वसुदेव और चारुदत्त की कन्या गन्धर्वदत्ता का विवाह। वसुदेव ने कहा— मैं मगध का निवासी गौतम गोत्रीय स्कंदिल नाम का ब्राह्मण हूँ। यक्षिणियों से मेरा प्रेम है। एक यक्षिणी मुझे अपने इष्ट प्रदेश में ले गयी। इतने में दूसरी ने ईर्ष्यावश उसे पकड़ लिया। दोनों में कलह होने लगी, मैं गिर पड़ा। इसलिए मैं नहीं जानता कि यह प्रदेश कौन सा है।

अधेड़ उम्र के मनुष्य ने उत्तर दिया— इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं की यक्षिणियाँ तुमसे प्रेम करती हैं।

पता चला कि नगरी का नाम चम्पा है वहाँ एक मन्दिर था। पादपीठ पर नामांकित वासुपूज्य भगवान् की मूर्ति प्रतिष्ठित थी।

आगे चलने पर उसे हाथ में वीणा लिये हुए सपरिवार एक पुरुष दिखाई दिया। वीणाओं को बेचने के लिए लोग वीणाओं को गाड़ी में भरकर लिये जा रहे थे। स्कंदिल ने किसी आदमी से पूछा—क्या यह इस देश का रिवाज है कि सभी लोग वीणा का व्यापार करते हैं।

(क्रमशः

राजा-सम्प्रति

पाँचवाँ परिच्छेद

पूर्वानुवृत्ति

दैवयोग से उस पत्र की बात विषयान्तर हो जाने के कारण राजा को विस्मृत हो गई, किन्तु रानी के मस्तिष्क में वह घूम रही थी। उस अमूल्य अवसर को वह खोना नहीं चाहती थी, उस पत्र को पढ़ने के लिए वह आतुर हो रही थी। अतः किस बहाने वह वहाँ से उठ जाय, इसी का विचार करने लगी। राजा भोजन करने लगे और रानी भी पास ही बैठी होने के कारण मन-ही-मन कोई निमित्त सोच रही थी। महेन्द्र और संघमित्रा भी सामने बैठे हुए भोजन कर रहे थे। तत्कालही महारानी शौच-निवृत्तिका कारण बताकर उठ खड़ी हुई और सीधी महाराज के विचार-गृह में पहुंच कर उसने वह पत्र झटपट् पढ़ लिया। पढ़ते ही उसके मुख-पर से विचारों की छाया-झलक दिखाकर लुप्त हो गई। उसने क्रूर अट्टहास किया और अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क उसके मनमें उठने लगे। बड़ी शीघ्रता से उसने नेत्राञ्जन की शलाका लेकर उसे थूंक से गीली करते हुए अञ्जन में डुबोया और एक स्थान पर पत्र में कुछ सुधार दिया। अर्थात् अकार पर केवल बिन्दु लगाकर पत्र को ज्यों-का-त्यों रख दिया। इसके बाद फुर्ती से वह बाहर निकली तो सामने ही कृष्णमुखी श्यामा मिली। उसकी कार्य कुशलता से श्यामा सावधान हो गई कि आज अवश्य ही कोई विशेष बात हुई है। श्यामा को देखते ही रानी मुसकुराई! उनकी [illegible] हँसी को देख श्यामा ने पूछा "क्या महारानी; काम की कोई चाबी (कुंजी) हाथ लगी ?"

"अभी तो ऐसा ही जान पड़ता है। कार्य प्रारम्भ कर दिया है। पूर्ण होने पर जब उसका फल प्राप्त हो, तब की बात है!" रानी ने धीरे से कहा।

"बस अब तो अपनी विजय ही समझिये!"

"तब तो तेरे मुँह में घी, शक्कर।"

इस प्रकार श्यामा से कहकर महारानी सीधी भोजन गृह में पहुंची; जहाँ कि महाराज भोजन कर रहे थे। उसने शांतिपूर्वक महाराज को भोजन कराया क्योंकि अब उसके मन में शांति थी, साथ ही प्रसनन्नता भी। महा-राज भोजन करने के बाद विश्राम-गृह में आये। वे पान का बीड़ा खा ही रहे थे कि इतने में अवन्ती जानेवाला दूत तैयार होकर सामने आ खड़ा

हुआ। उसने महाराज को नमन किया और राजा ने तत्काल कुणाल के लिए लिखा हुआ पत्र लिफाफे में बंदकर मुहर लगाने के बाद दूत को सौंप दिया। साथ ही कुछ समाचार जबानी भी कहे। दूतने नम्रता-पूर्वक नीचे झुककर पत्र उठा लिया और पुनः महाराज को प्रणाम कर अश्वारूढ़ हो वह अवन्ती की ओर चल दिया।

छठा परिच्छेद

पूर्व-परिचय

यह अवसर्पिणी-काल का पाँचवा 'आरा' चल रहा है। पहला 'सूषम-सुषम' नाम का आरा चार कोड़ा-कोड़ी सागरोपम परिमाण का होता है। इस आरे के आरम्भ में पुरुष की आयु तीन पल्योपम तथा शरीर तीन कोसका होता है। वही क्रमशः तोन होते हुए दूसरे 'सुषम्' नामके आरे में दो पल्योपम का आयुष्य और दो कोसका शरीर रह जाता है। इस दूसरे आरे का परिमाण तीन कोड़ा-कोड़ी का जानना चाहिए। यह दूसरा आरा पूर्ण होकर जब तीसरा आरा आरम्भ होता है; तब मनुष्य के शरीर का परिमाण एक कोसका और आयुष्य भी एक पल्योपमका हो जाता है। तीसरे आरे का परिमाण भी दो कोड़ा-कोड़ी सागरोपमका होता है। इसका नाम 'सुषम्-दुःषम्' है। इन तीनों आरों में युगलिक मनुष्य होते हैं। अर्थात् वे स्त्री और पुरुष साथ ही जन्म लेते हैं। कल्पवृक्षसे इच्छित वस्तु प्राप्त कर कषाय-रहित हो सांसारिक सुख भोगते हुए अपना जीवन व्यतीत करते हैं। अल्प कषाय युक्त होने से मृत्यु पाकर भी वे देवलोक में जाते हैं। इस तीसरे आरे के अन्त में ऋषभदेव भगवान का जन्म हुआ।

ऋषभदेव स्वामी ने युगलिक धर्म निवारण कर व्यवहार मार्ग प्रवर्तित किया। वे ही पहले राजा हुए और प्रथम धर्म प्रवर्तक एवं तीर्थंकर हुए। उन्हीं के पुत्र भरत इस अवसर्पिणी में पहले चक्रवर्ती हुए। प्रथम तीर्थंकर के मोक्ष प्राप्त करने के पश्चात् तीन वर्ष और साढ़े आठ मास व्यतीत होने पर चौथा आरा आरम्भ हुआ। इस चौथे आरे का परिमाण बयालिस हजार वर्षकम एक कोड़ा-कोड़ी सागरोपम का है। इसके आरम्भ में पाँच सौ धनुष के परिमाण का शरीर और कोटि 'पूर्व' का आयुष्य परिमाण था। इस युग के आरम्भ में भरत चक्रवर्ती थे।

श्रीऋषभदेव भगवान को केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् अंतमुर्त्त में मोक्षमार्ग आरम्भ हुआ ; वह उनकी असंख्याती पाट-परम्परा तक चालू रहा। उनके समय में संसार में महान् से भी महान् जैन धर्म को राष्ट्रधर्म कहो या

राजधर्म, सभी भगवान ऋषभदेव के कथित धर्म को मानते थे। यद्यपि उनके पुत्र कच्छ, महाकच्छ आदि तापस रूप में वन-फल ही खाते थे; फिर भी भाव से तो वे ऋषभदेव को पूजनेवाले एवं उन्हीं का ध्यान धरनेवाले ही थे। भरत का पुत्र मरिची त्रिदण्डी हो गया था। फिर भी वह ऋषभदेव का ध्यान धरता और जैन साधुओं की सेवा करता था। ऋषभदेव का शासन लगभग अर्ध आरा पर्यन्त चला। उनको हुए पचास लाख कोटि सागरोपम काल व्यतीत हो गया तब उन्हीं की पाट परम्परा में विनीता नगरी में दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ हुए। उनके समय में 'सगर' नामके दूसरे चक्रवर्ती हुए।

सगर चक्रवर्ती के ही जहुकुमार आदि साठ हजार पुत्र देशाटन करने के लिए निकले, वे घूमते-घूमते अष्टापद पर्वत के पास पहुँचे और वहाँ की यात्रा करते हुए भव्य मन्दिरों को देखकर अपने पूर्वजों की कीर्तिरक्षा के लिए उन्होंने अष्टापद के चारों ओर दंडरत्नों से युक्त एक खाई निर्माण की और उसमें गंगा का जल प्रवाह मोड़ दिया। इससे भुवनपति के नागकुमार के भुवनों में खलबली मच गई। अतः नागकुमार के इन्द्र भूतानेन्द्र ने अपनी दृष्टि-ज्वाला से उन्हें जलाकर भस्म कर दिया। इस प्रकार तीर्थभक्ति करते हुए मारे गये, वे सगर राजा के पुत्र बारहवें देवलोक में गये। गंगा के प्रवाह से ग्राम एवं नगरों के हानि पहुँचने के कारण सगर ने अपने पौत्र भगीरथ कुमार को वहाँ जाने की आज्ञा दी और उसने वहाँ जाकर भूतानेन्द्र को प्रसन्न करके जाह्नवी को पुनः समुद्र में मिलाकर लोगों का संकट दूर किया। तभी से गंगा, जाह्नवी और भागीरथी के नाम से भी सम्बोधित की जाती है।

भगवान अजितनाथ के मोक्षगमन के पश्चात् तीसलाख करोड़ सागरोपम व्यतीत हो जाने पर संभवनाथ का निर्वाण हुआ। उसके बाद दसलाख करोड़ सागरोपम बीतने पर अभिनन्दन का निर्वाण हुआ। इस प्रकार बीस तीर्थंकरों तक चौथे आरे का कितना ही समय व्यतीत हो गया।

बीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रतस्वामी मगध देश की राजगृही नगरी में तीस हजार वर्ष की आयु लेकर उत्पन्न हुए। उन्नीसवें मल्लिनाथ के पश्चात् चौवन लाख वर्ष में मुनि सुव्रत मोक्ष को गये। उनके समय में हस्तिनापुर नगर में पद्म नामका राजा राज्य करता था। उसके विष्णुकुमार और महापद्म नाम के दो पुत्र थे। उनमें महापद्म छह खण्ड पृथ्वी साध कर नवें चक्रवर्ती हुए। उन महापद्म चक्रवर्ती का नमुचि नामक ब्राह्मण मन्त्री था। चक्रवर्ती ने एक दिन पूर्व उसे वरदान दिया। इसलिए नमुचि ने महापद्म से कार्तिक शुक्ल चौदस तक के लिए राज्य माँग लिया। चक्रवर्ती ने उसे राज्य सौंप दिया और स्वयं अंतःपुर में निवास किया।

इधर नमुचि ने हिंसामय यज्ञ आरम्भ किया और उसमें अनेक ऋषि एवं ब्राह्मणों ने भाग लेकर उसकी प्रशंसा करते हुए दक्षिणा लेना आरम्भ किया। इस प्रकार प्रत्येक धर्म के लोग एवं नेतागण उसके यज्ञ में आये ; किन्तु वह यज्ञ हिंसामय होने के कारण जैन यतियों द्वारा उसमें भाग न लेने से नमुचि क्रुद्ध हुआ। दैवयोग से उस समय मुनि सुव्रत स्वामी के शिष्य सुव्रतसूरिका अनेक शिष्यों के साथ वहाँ चौमासा था। अतएव नमुचि ने उन्हें बुलाकर पूछा कि—"जब प्रत्येक धर्म-दर्शन के पण्डितों ने मेरे यज्ञ में भाग लिया है ; तब आप क्यों नहीं पधारे ?"

"राजन् ! उस हिंसामय यज्ञ में जैन-यति भाग नहीं ले सकते !" सुव्रतसूरि ने कहा।

"ऐसा अनुपम-पुण्यमय यज्ञ आपकी दृष्टि में हिंसामय है, क्यों ? ठीक है ! आपको सात दिन की अवधि दी जाती है कि इस बीच मेरे राज्य की सीमा छोड़कर चले जाइये।"

"किन्तु राजन् ! चौमासे में साधुलोग विहार नहीं कर सकते। साथ ही समस्त भरतक्षेत्र में आपका राज्य होने से साधु कहाँ जायेंगे ?" सुव्रतसूरि ने उसे समझाने का प्रयत्न किया।

फिर भी गाढ़ अज्ञानरूपी अन्धकार में अन्धे बने हुए एवं अभिमानरूपी फणिधर के रूप में डोलते हुए उस नमुचि की उन्मत्त आत्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने पुनः उसी आज्ञा को दोहराते हुए कहा—"यदि सात दिन के भीतर तुमलोग मेरी सीमा छोड़कर नहीं चले गये ; तो मैं तुम सबको मरवा दूँगा, यह याद रखना।"

सुव्रतसूरि उपाश्रय में चले आये और नगर के सभी सज्जनों एवं मंत्रियों ने भी नमुचि को बहुत समझाया ; किन्तु मूसलधार वर्षा होने पर भी जिस प्रकार चिकने पत्थर पर उसका कोई असर नहीं होता ; उसी प्रकार नमुचि ने किसी की बात पर ध्यान नहीं दिया।

सुव्रतसूरि ने अपने आकाश-गामिनी विद्यावाले एक शिष्य को मेरुपर्वत के शिखर पर तप करने वाले महापद्म चक्रवर्ती के ज्येष्ठ बन्धु विष्णुकुमार को बुलाने के लिए भेजा। उसने वहाँ जाकर उनको सब हाल कह सुनाया। तब वे उस शिष्य सहित हस्तिनापुर आये और गुरु को वन्दन कर दूसरे दिन विष्णुकुमार मुनि राजसभा में पहुँचे, जहाँ कि यज्ञ हो रहा था ; किन्तु उन्हें देखकर नमुचि को छोड़ सभी ब्राह्मण, ऋषि, मन्त्रियों तथा अन्य राजाओं ने वन्दना की।

विष्णुकुमार ने भी नमुचिको समझाने का सब प्रकार से प्रयत्न किया, किन्तु 'विनाशकाले विपरीत बुद्धि' के अनुसार उसने एक भी बात नहीं सुनी

और अपनी उसी आज्ञा को फिर से दोहराते हुए कहा कि सात दिन की अवधि समाप्त होते ही मैं सबको मरवा डालूँगा। सात में से आज का एक दिन तो कम हो ही गया है।

"ठीक है, तब क्या मुझ अकेले को रहने के लिए तो थोड़ी सी भूमि मिल जायगी ?"

"हाँ, केवल तीन पग पृथ्वी तुम्हें मिलेगी।" उस अभिमानी नमुचि ने उत्तर दिया।

इसके पश्चात् विष्णुकुमार ने वैक्रिय-लब्धि द्वारा एक लाख योजन आकार का शरीर बढ़ा लिया और जम्बूद्वीप के पूर्व-पश्चिम जगती दुर्गपरिसीमा पर दो पाँव रखकर क्रोध से तमतमाते हुए विष्णुकुमार ने पूछा :—"बतला ! अब तीसरा कहाँ रक्खू ?" किन्तु उनका ऐसा भयङ्कर रूप देखकर नमुचि चकित हो स्तब्ध रह गया। अतएव विष्णुकुमार मुनि ने तीसरा पाँव उसकी छाती पर रखकर उसे पाताल में पहुँचा दिया। उसकी आत्मा सातवीं नर्कभूमि की अतिथि बन गई।

विष्णुकुमार के लाख योजन का शरीर धारण करने से पृथ्वी में उथल-पुथल मच गई। पर्वतों के शिखर ढहने लगे, ज्योतिषी देव भी भयभीत हो गये। वे आश्चर्य करने लगे कि 'यह क्या हो रहा है ?' समग्र ब्रह्माण्ड में खलबली क्यों मच गई ? चक्रवर्ती भी अन्तःपुर से निकल कर अपने ज्येष्ठ बन्धु के क्रोध को शान्त करने के लिये उनके चरणों में गिरकर प्रार्थना करने लगे। साथ ही विद्याधर और गन्धर्व भी उन महामुनि का क्रोध शान्त करने के लिए आकाश मण्डल में मधुर स्वर में गान करने लगे। इस प्रकार के अनेक मधुर कोलाहल के द्वारा जैसे-जैसे उन महामुनि का क्रोध शान्त होता गया, वैसे-वैसे उनका शरीर भी संक्षिप्त होने लगा। क्रमशः मुनि अपने मूल स्वरूप में स्थित हुए और चक्रवर्ती ने उनसे क्षमा याचना की। इस प्रकार नमुचिका उपसर्ग निवारण कर विष्णुकुमार उपाश्रय में पधारे। आचार्य के समीप जाकर उन्होंने अपने कार्य क्रोध का प्रायश्चित किया। यद्यपि संघ का कार्य होने से उन्हें कोई दोष नहीं लग सकता था; फिर भी स्वाध्याय, ध्यान एवं इरियावहि द्वारा गुरु के समक्ष आलोचना करके अन्त में विष्णुकुमार मोक्षपुरी के अधिकारी हुए।

(क्रमशः)

संकलन

आप अहिंसक हैं ?

शाकाहार का अहिंसा के साथ सम्बन्ध है यह तो सच है पर जो शाकाहारी हैं वे सभी अहिंसक हों यह नहीं कहा जा सकता। शाकाहार अहिंसा की प्रथम कक्षा है। आप जैन हैं, पूर्णतया शाकाहारी हैं किन्तु क्या आप पूर्ण अहिंसक हैं ? यह एक प्रश्न है।

जैन समाज की बहनें लिपिस्टिक का प्रयोग करती हैं। उसमें मछलियों की हड्डियों का चूरा मिला होता है। आप बहनें सिल्क का उपयोग करती हैं। एक सिल्क की साड़ी बनाने में ४० हजार तितलियों के कीड़ों का नाश होता है।

क्या आप पुत्रों की शादी में अपने सम्बन्धियों से ५०-६० साड़ियां लेना पसन्द करती हैं ? अहिंसक बनने के लिये पहले इसे छोड़ना होगा। आपमें से कितने महानुभाव हैं जो चमड़े का पर्स, जूते व कमर के पट्टे उपयोग में लेते हैं ? गाय के चमड़े से बनी वस्तुओं का प्रयोग करते हैं ? आपमें से कितने हैं जो दहेज कम मिलने पर बहुओं को सताते हैं ? कई बार तो समाप्त ही कर देते हैं ? फिर आप अहिंसक कैसे ?

(आचार्य प्रवर श्री देवेन्द्रमुनिजी म० के सान्निध्य में २८ मई ९६ को महावीर भवन, चांदनी चौक, दिल्ली में आयोजित स्व० उपाध्याय श्री पुष्कर-मुनिजी की दीक्षा जयन्ती में दिये गये अभिभाषण से)

—मेनका गांधी

जैन धर्म गौरव

यद्यपि मैं जैन धर्म में जन्मी नहीं हूं किन्तु विचारों से जैन हूं। जहां तक संभव होता है जैन धर्म के नियम व सिद्धान्तों को पालने का प्रयास करती हूँ। मैं एक बार अमेरिका पहुंची। वहाँ बैठक के पश्चात् हम रेस्टोरेण्ट में भोजन हेतु पहुंचे। वहाँ वेटर ने पूछा—आप खाने में क्या पसन्द करेंगी—शाकाहार या मांसाहार ?

मैंने कहा—मैं तो अण्डा खाना भी पसन्द नहीं करती। मुझे तो शुद्ध शाकाहारी भोजन चाहिए। क्या आप जैन हैं ? वेटर ने उसी क्षण पूछा। वेटर की बात सुनकर मैं सोचने लगी—कितना महान् धर्म है यह जैन धर्म ! एक दिन या दो दिन के त्याग से यह पहचान नहीं मिलती, ऐसी पहचान तो वर्षों के तप, त्याग व संयम साधना से मिलती है।

पर दुर्भाग्य है कि जैन समाज के जो विमल आदर्श हैं उनमें विकृति आ रही है। मैं एक स्थान पर गयी जहाँ पर एक जैन नवयुवक भी मेरे साथ भोजन करने के लिए बैठा। वेटर ने पूछा—आप भोजन में क्या लेना पसन्द करेंगे ? शाकाहार या मांसाहार। उस जैनी युवक ने कहा, मांसाहार।

यह सुनकर मैं चौक उठी मैंने कहा—आप जैन धर्मावलम्बी हैं, फिर मांसाहार कैसे ? उस युवक ने कहा—घर पर तो मांसाहार मिलता नहीं, इसलिए होटल या पार्टियों में मांसाहार ले लेता हूँ। मैंने उसे अमेरिका की वह घटना सुनाई और कहा—भैया यह जो जैन धर्म की महानता बनी हुई है, उसे बनाये रखो। जैन धर्मावलम्बियों को गौरव होना चाहिए कि वे शुद्ध शाकाहारी हैं।

मेरी बात सुनकर उस युवक ने कहा—बहनजी मैं भटक गया था। अब मैं प्रतीज्ञा करता हूँ कि कभी भी मांसाहार नही करुँगा। मुझे यदि कोई उपदेश देता तो मैं नहीं छोड़ पाता, पर अब मैं समझ गया। जीवनपर्यन्त मांसाहार का प्रयोग नहीं करुँगा।

(लालकिले पर आचार्य प्रवर श्री देवेन्द्रमुनिजी के मंगल सान्निध्य में आयोजित सभा में २६ मई ९६ को दिये गये अभिभाषण से)

—श्रीमती सुषमा स्वराज

साभार : रत्नराज—अगस्त-सितम्बर९६

OUR CUSTOMERS ARE OUR MASTERS

You can always choose Oodlabari Tea for finest CTC teas, flavoury leaf teas and health giving Green Teas at reasonable prices. You can also phone at our Office for any assistance in selection of teas.

Insist on purchasing following packets :

GREAT REFRESHER

OODLABARI

Royal

Fine Strong CTC Leaf Tea With Rich Taste

PACKED BY
THE OODLABARI COMPANY LTD.
NILHAT HOUSE, 11, R.N. MUKHERJEE ROAD
CALCUTTA-700 001

Anyone desirous of taking dealership for our teas may kindly contact at following address :

THE OODLABARI COMPANY LIMITED
NILHAT HOUSE, 6TH FLOOR
11, R. N. MUKHERJEE ROAD, CALCUTTA 700 001
Calcutta office Phone : 248-1101, 248-9594, 248 9515

सपनों की हो
मजबूत बुनियाद
निवेश कर निश्चिंत रहें आप
आप सपने बुनते रहते हैं। और आपके सारे सपने, आकांक्षाएं और आशाएं जुड़ी रहती हैं वित्तीय स्थायित्व और सुरक्षा के संग-साथ
यह आपके लिए सही मौका है जब आप अपने सपनों को साकार बनाने के लिए एक सुरक्षित स्थायी जमा योजना में अपनी बचत कर सकते हैं।
प्रूडेंशियल संपद — प्रूडेंशियल ग्रुप की स्थायी जमा योजना। चार सौ करोड़ रु० के इस विशाल संगठन में सम्मिलित हैं विख्यात कंपनियाँ — प्रूडेंशियल कैपिटल मार्केट्स लि०, प्रूडेंशियल मौली शूगर्स लि०, के एल जे प्लास्टिक्स लि०, प्रूडेंशियल फर्मास्यूटिकल्स लिमिटेड, प्रूडेंशियल श्री जगन्नाथ एग्रोटेक लि० और अनेक अन्य कंपनियां। अभी कार्यकाल के सिर्फ दस वर्ष हुए हैं और ग्रुप ने देश-विदेश में अपनी मौजूदगी का सिक्का जमा दिया है।
प्रूडेंशियल संपद स्थायी जमा योजना मे निश्चिंत होकर निवेश कीजिए। और अपने सपनों को साकार होते देखिए।
Prudential
Sampad
FIXED DEPOSIT SCHEMES
Your Dreams. Our Schemes.
प्रूडेंशियल कैपिटल मार्केट्स लिमिटेड
1 व 2, ओल्ड कोर्ट हाउस कॉर्नर, कलकत्ता - 700 001
कार्यकुशलता से अर्जित विश्वास
Sobhagya/86

CREATIVE LIMITED
12, Dargah Road, Post Box 16127
Calcutta-700 017
Phone : (033) 240-3758/1690
240-3450/0514
Fax : (033) 2400098, 2471833

SURANA MOTORS PVT. LTD.
84, Parijat, 8th floor
24A, Shakespeare Sarani
Calcutta-700071
Phone : 2477450/5264

M/s. J. KUTHARI PVT. LTD.
12, India Exchange Place
Calcutta-1
Phone : 220-3142, Resi. 475-0995

PARK PLACE HOTEL
SINGHI VILLA
49/2, Gariahat Road
Calcutta-700019
Phone : 475-9991/9992/7632

M/s. Metropolitan Book Company
93, Park Street
Calcutta-700016
Phone : 292418, Resi. 464-2783

M/s. D. SANDEEP & CO.
78, J. S. S. Road
Ratna Deep
Opera House
Mumbai

BOYD SMITHS PVT. LTD.
B-3/5, Gillander House
8, Netaji Subhas Road
Calcutta-700001
Phone : Office 220-8105/2139
Resi. 244-0629/0319

NAHAR
5/1, A. J. C. Bose Road
Calcutta-700 020
Phone : 2476874, Resi 2443810

P. C. JAIN
B-14, Sarvodaya Nagar
Kanpur-208005
Phone 29-5552/5955

ARBEITS INDIA
Export House Recognised by
Govt. of India
Proprietor—SANJIB BOTHRA
8/1, Middleton Road
8th Floor, Room No. 4
Calcutta-700071
Phone : 201029/6256/4750
Telex : 0212333 ARBI IN
Fax No. 0091-33290 174

JAYANTI LAL & CO.
20, Armenian Street
Calcutta-700001
Phone : 25-7927/6734/3816
Resi. 400440

HARAKH CHAND NAHATA
21, Anand Lok
New Delhi-110 049
Phone : 6461075

RAJIV LALWANI
12, Duff Street
Calcutta
Phone : 2556705
In the Memory of Late
NARENDRA SINGH JI BOYD

G. M. SINGHVI
M/s. Willard India Limited
Mcleod House
13, Netaji Subhas Road
Calcutta-700 001
Phone : 248-7476-8 Office
475-4851/1483 Resi.
Fax : 248-8184

RATAN LAL DUNGARIA
16B, Ashutosh Mukherjee Road
Calcutta-20
Phone : Resi. 455-3586

Kumar Chandra Singh Dudhoria
7, Camac Street
Calcutta-700017
Phone: 242-5234/0329

GLOBE TRAVELS
Contact for better & Friendlier Service
11, Ho Chi Minh Sarani
Calcutta-700071
Phone : 2428181

PARSAN BROTHERS
Diplomatic & bonded Stores Suppliers
18-B, Sukeas Lane
Calcutta-1
Phone 242-3870 Office
Fax : 242-8621

ABHAY CHAND BOTHRA
Phone : Resi. 298-4729
298755

C. H. Spinning & Weaving Mills Pvt. Ltd.
Bothra Ka Chowk
Gangasahar
Bikaner

APRAJITA BOYD
9/10, Sitanath Bose Lane
Salkia, Howrah-711106
Phone : 6653666, 6652272

B. W. M. INTERNATIONAL
Manufacturers & Exporters
Peerkhanpur Road
Bhadohi-221401 (U.P.)
Phone : Office 05414-25178,
25778, 25779
Fax : 05414-25378
Bikaner Phone :
0151-522404, 25973
Fax : 0151-61256

Sudeep Kumar Singh Dudhoria
Phone : Off. 252565/6315
Resi. : 4753133

A-D. Electro Steel Co. (Pvt) Ltd.
Manufacturers of Carbon Steel,
Cast Steel, M. V. Steel & all sort
Alloy Steel Casting as per
specification
Baltikuri (Surkhimill) Kalitala
Howrah
Office : 2203889/0714
Works : 6670485/2164
Resi. : 471-8393
Fax : 91-33-6672164

UJJWAL TRADING PVT. LTD.
Regd. Office :
11, Clive Row
3rd Floor, Room No. 14
Calcutta-700001
Phone : Off. 242-4131/4756

Royal Touch Overseas Corporation
47, Pandit Purushottam Roy Street
2nd floor, Calcutta-700 007
India
Phone : 91-33-230 1329, 2321033
Fax : 91-33-230 2413

SMT. KUSUM KUMARI DUGAR
166, Jodhpur Park
Calcutta-700068
Phone : 4720610

VIJAY KUMAR BHANDAWAT
20/1, Maharshi Devendra Road
5th Floor, Calcutta-7
Phone : 239-6823, 25-0623

GRAPHITE INDIA LIMITED
Pioneers in Carbon/
Graphite Industry
31, Chowringhee Road
Calcutta-700 016
Phone : 2264943, 292194
Fax : (033) 2457390

KUSUM CHANACHUR
Prop·
CHURORIA BROTHERS
Mfg. by—K. E. C. Food Product
P. O. Azimganj
Dist. Murshidabad
Phone : STD 03483-53234
Cal—230-0432, 231-2802

ARIHANT ELECTRIC CO.
Manufacturer of Electric Cables
21, Rabindra Sarani
Calcutta-700007
Phone : 255668

MEERA BOYD
83/B, Vivekanand Road
Calcutta-700006
Phone : 2410719

LALCHAND DHARAMCHAND
Govt. Recognised Export House
12, India Exchange Place
Calcutta-700 001
India
Phone (B) 220-2074/8958
(D) 220-0983/3187
Cable : SWADHARMI
Fax : (033) 220975
Resi. : 464-3235/1541
Fax : (033) 4640547

NIRMALA BOTHRA
7/1/A, Nafar Kundu Road
Calcutta-700026
Phone : 475-5503

VINOD SIPANY
6/4/3, Seals Garden Lane
Calcutta-700 002

REENA MAHENDRA BHANDARI
13, Sahakar
'B' Road, Church Gate
Bombay-20
Phone : 285-4970 Resi.
285-3762/65, 204-1792 Office

Pritam Elect. & Electronics P Ltd.
22, Rabindra Sarani,
Shop No. G-136
Calcutta-700073
Tel. (033) 262210

WB/NC - 330

'Titth ayara'

Registered with the registered
of Newspapers for India under
No. R.N. 3018/77

Vol. XXI No. 2

May 1997

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नही है, जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है। जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास कुछभी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

महावीर जयन्ती के शुभ अवसर पर उनका संदेश जन–जन तक पहुँचे इस शुभ कामना के साथ –

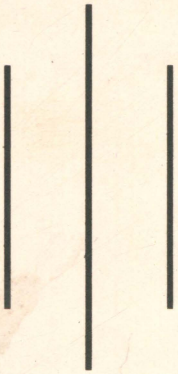

Kamal Singh Rampuria
Rampuria Mansions
17/3, Mukhram Kanoria Road, Howrah
Phone No. : 666-7212/7225